10

उपनिवेशों का खात्मा और शीत युद्ध

आप जानते हैं कि भारत और पाकिस्तान में उपनिवेशी शासन अगस्त 1947 में समाप्त हुआ और ये दोनों देश स्वतंत्र राष्ट्रराज्य के रूप में स्थापित हुए। दरअसल द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यानी 1945 से 1975 के बीच तीस वर्षों में अफ्रीका और एशिया के अधिकांश देश स्वतंत्र हो गए। 1945 में इंडोनेशिया ने स्वतंत्रता की घोषणा की, 1947 में भारत और पाकिस्तान, 1948 में बर्मा और श्रीलंका आदि देश स्वतंत्र हुए, 1949 में चीन में साम्यवादी क्रांति द्वारा स्वतंत्र गणराज्य स्थापित हुआ। उसी समय कोरिया, फिलिपाईंस आदि पूर्वी देश भी स्वतंत्र हुए। 1950 के दशक में अफ्रीका के देश स्वतंत्र होने लगे। 1960 और 1970 के दशकों में वियतनाम, कम्पूचिया जैसे देश लंबे सशस्त्र संघर्ष के बाद स्वतंत्र हुए। इस प्रकार 1980 में दुनिया का नक्शा 1940 के नक्शे की तुलना में बहुत बदल गया। उपनिवेशी शासन की समाप्ति और उन देशों में स्वतंत्र सरकारों के बनने को हम 'विउपनिवेशीकरण' कहते हैं।

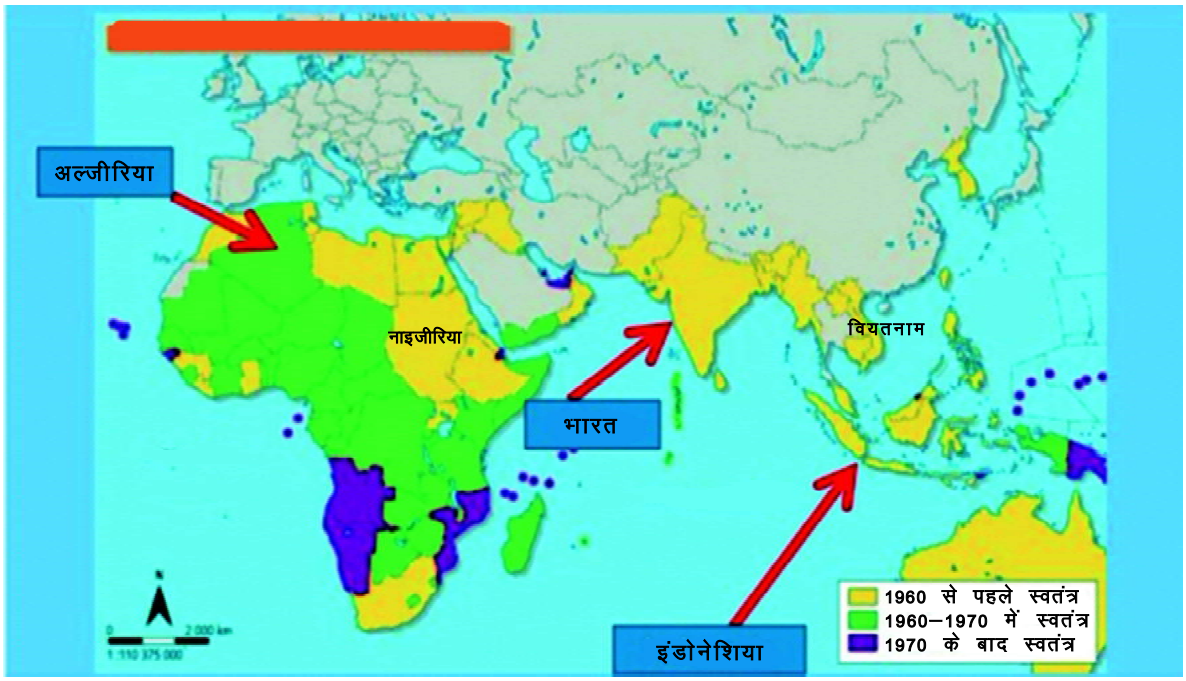

मानचित्र 10.1 : एशिया और अफ्रीका का विउपनिवेशीकरण

कक्षा 9 में हमने उपनिवेशों के बनने के बारे में पढ़ा था। आपको याद होगा कि उपनिवेशीकरण के कई पक्ष थे–पहला – राजनैतिक सत्ता ब्रिटेन जैसे साम्राज्यवादी देशों के हाथ में थी। दूसरा – उपनिवेशों का आर्थिक शोषण होता था। उनसे सस्ते में कच्चा माल प्राप्त करके यूरोप के कारखानों में नई वस्तुएँ बनाकर

बेचा जाता था और उपनिवेशों से बड़े पैमाने पर लगान वसूल किया जाता था। तीसरा – उपनिवेश के लोगों को यह कहा जाता था कि वे असभ्य हैं और यूरोप के देश उन्हें सभ्य बनाने के लिए आए हैं और उनकी भलाई इसी में है कि वे यूरोप की संस्कृति व विचार अपनाएँ। उपनिवेशों का खात्मा तभी हो सकता था जब उन्हें राजनैतिक, आर्थिक आज़ादी और वैचारिक व सांस्कृतिक आत्मसम्मान मिल पाता।

जैसे कि हमने पिछली कक्षा में पढ़ा था कि ब्रिटेन, फ्रांस, हालैंड, पुर्तगाल और जापान प्रमुख साम्राज्यवादी देश थे जिन्होंने अमेरिका, एशिया और अफ्रीका के देशों को अपना उपनिवेश बनाकर रखा था। हमने यह भी पढ़ा था कि अठारहवीं सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में उत्तर व दक्षिण अमेरिका के अधिकांश उपनिवेशों ने इन साम्राज्यवादी देशों से युद्ध करके स्वतंत्रता हासिल कर ली थी। इस अध्याय में हम 1945 के बाद हुए विउपनिवेशीकरण के बारे में पढ़ेंगे।

एक उपनिवेश और स्वतंत्र देश के बीच क्या–क्या अन्तर होंगे – कक्षा में चर्चा करें।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति :–

द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त तक आते–आते पुराने साम्राज्यवादी यूरोपीय देश बहुत कमज़ोर हो गए थे। जापान, फ्रांस, हालैंड और ब्रिटेन तीनों युद्धों के प्रभाव से आर्थिक रूप से बहुत कमज़ोर हो गए थे और संयुक्त राज्य अमेरिका की आर्थिक सहायता पर निर्भर थे। युद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ दो बड़े शक्तिशाली देशों के रूप में उभरे थे। दोनों देश उपनिवेशवाद का विरोध करते थे और चाहते थे कि उपनिवेशों को स्वतंत्रता मिले। वे अब ब्रिटेन जैसे साम्राज्यवादी देशों पर दबाव डालने लगे कि वे अपने उपनिवेशों को स्वतंत्रता दे दें।

आर्थिक क्षेत्र में एक और महत्वपूर्ण बदलाव हुआ था। युद्ध से पहले भारत जैसे उपनिवेश ब्रिटेन से कर्ज़ लेते थे। लेकिन युद्ध के दौरान ब्रिटेन ने उपनिवेशी भारत सरकार से बहुत बड़ी मात्रा में कर्ज़ ले रखा था। अतः भारत से उसे संसाधन मिलने की जगह ब्रिटेन को कर्ज़ चुकाना पड़ रहा था इस दौर में उपनिवेश बनाए रखना ब्रिटेन को बहुत महंगा पड़ रहा था।

ब्रिटेन जैसे मित्र राष्ट्र ने युद्ध इस आधार पर लड़ा था कि वे स्वतंत्रता और लोकतंत्र के लिए जर्मनी से लड़ रहे हैं। वे अब जीतने के बाद अपने ही उपनिवेशों को स्वतंत्रता देने से कैसे इन्कार कर सकते थे? युद्ध के दौरान अधिकांश उपनिवेशों में स्वतंत्रता आंदोलन बहुत तीव्र हो गए थे। इन देशों ने देखा कि किस प्रकार यूरोप के साम्राज्यवादी देश जर्मनी से हार रहे थे और कमज़ोर पड़ रहे थे। वे इस मौके का फायदा उठाकर स्वतंत्रता हासिल करना चाहते थे। बहुत से देशों में यह सशस्त्र आंदोलन बन गया था। भारत जैसे देश में भी उपनिवेशी सेना और पुलिस अपने देश की स्वतंत्रता के पक्ष में हो रहे थे। इन सब बातों का यही मतलब था कि अब पुराने तरीकों से इन उपनिवेशों को नियंत्रण में नहीं रखा जा सकता था और अगर नियंत्रण में रखना हो तो वह उपनिवेशों से मिल रहे आर्थिक लाभ से अधिक खर्चीला होगा। यूरोप के देश पहले से ही युद्ध के कारण आर्थिक संकट में थे और वे उपनिवेशों के बचाव के लिए और वित्तीय भार नहीं उठा सकते थे।

अब इन साम्राज्यवादी देशों के समक्ष यह समस्या उठी कि उपनिवेशों में सत्ता किसे सौंपें? क्या वे उन देशों में एकता और स्थिरता को बनाए रख सकते हैं? वे ऐसे लोगों के हाथ सत्ता सौंपना चाहते थे जो साम्राज्यवादी देशों के आर्थिक और कूटनीतिक हितों की रक्षा करें। ये वही लोग थे जो औपनिवेशी शासन के कारण बने थे और उससे लाभान्वित हुए थे जैसे राजा–महाराजा, ज़मींदार, बड़े व्यापारी और शिक्षित मध्यम वर्ग।

इस बीच सोवियत संघ उपनिवेशों में उन दलों को समर्थन दे रहा था जो वहाँ क्रांति के द्वारा स्वतंत्रता और सामाजिक बदलाव लाना चाहते थे। इन दलों का झुकाव साम्यवाद और समाजवाद की ओर था और वे चाहते थे कि उपनिवेशों में उपस्थित उच्च वर्गों जैसे राजा व नवाब, ज़मींदार और पूँजीपतियों को हटाकर किसानों व मज़दूरों का वर्चस्व बनाया जाए। उन दिनों विश्व के देश दो खेमों में बंट रहे थे, एक ओर सोवियत संघ के खेमे के देश और दूसरी ओर अमेरिका के खेमे के देश। सोवियत संघ की मंशा थी कि जो देश उसकी मदद से स्वतंत्र होंगे वे उसके खेमे में रहेंगे और अमेरिका का विरोध करेंगे। चीन, वियतनाम, कोरिया आदि देशों में सोवियत संघ समर्थित दलों के नेतृत्व में आंदोलन चल रहे थे और भारत, इंडोनेशिया जैसे देशों में साम्यवादी दल महत्वपूर्ण हो रहे थे।

अमेरिका भी इस प्रतिस्पर्धा में पीछे नहीं रहना चाहता था। अमेरिका चाहता था कि सभी उपनिवेश जल्द –से–जल्द स्वतंत्र हो जाएँ ताकि सोवियत संघ समर्थित दल सत्ता में न आ पाएँ। साथ ही उसका यह प्रयास था कि उन देशों के उच्च वर्गों को सत्ता सौंपी जाए ताकि वे साम्यवादी विचार व देशों का प्रतिरोध कर पाएँ। दूसरी ओर अमेरिका की सामरिक ज़रूरत थी कि वह सोवियत संघ को घेरते हुए पूरी दुनिया में सैनिक अड्डे बनाए ताकि भविष्य में दोनों देशों के बीच युद्ध की स्थिति में वे काम आएँ। यह यूरोपीय देशों के पुराने उपनिवेशों में ही संभव था। इस तरह अमेरिका एक ओर उपनिवेशों की समाप्ति के लिए प्रतिबद्ध था और दूसरी ओर उपनिवेशों का फायदा भी उठाना चाहता था।

सोवियत संघ और अमेरिका के बीच की प्रतिस्पर्धा ने विउपनिवेशीकरण की प्रक्रिया पर गहरा असर डाला। दोनों देश चाहते थे कि उपनिवेशी व्यवस्था समाप्त हो और सभी देश स्वतंत्र हों। साथ–साथ दोनों देश यह चाहते थे कि इन नए स्वतंत्र देशों पर उनका वर्चस्व हो। कई उपनिवेशों के स्वतंत्रता आंदोलन सोवियत संघ और अमेरिका के बीच के संघर्ष में उलझ गए, जैसे – कोरिया, वियतनाम और अफ्रीका के नामीबिया व अंगोला।

नव स्वतंत्र देशों पर अपना प्रभाव जमाने के उद्देश्य से अमेरिका और सोवियत संघ ने उन्हें भारी मात्रा में ऋण दिया और उन्हें अपना कर्ज़दार बनाया। इन देशों की नीति के चलते यह लगने लगा कि पुराने उपनिवेश की जगह एक नव उपनिवेशवाद उभर रहा है जो कर्ज़ के माध्यम से और सैनिक अड्डों की मदद से देशों पर नियंत्रण कर रहा है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यह स्थिति बनी कि पुराने साम्राज्यवादी देश अपने उपनिवेशों को स्वतंत्रता देने पर मजबूर हुए और उसी समय दो महाशक्तियों की आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण नए स्वतंत्र देश किसी–न–किसी रूप में उनके प्रभाव में आए।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन और फ्रांस की स्थिति में क्या समानता और अन्तर थे?

ब्रिटेन और फ्रांस के अर्थशास्त्री गणना करके कहने लगे कि उपनिवेशों के होने से उनके देश को घाटा ही हो रहा है। आपके विचार में इसके क्या कारण रहे होंगे? क्या द्वितीय विश्व युद्ध से पहले भी यही परिस्थिति रही होगी?

उपनिवेशों के प्रति सोवियत संघ और अमेरिका की नीतियों में क्या अन्तर और समानताएँ थीं?

राजनीतिशास्त्र के अध्याय में आपने 'गुटनिरपेक्षता' के बारे में पढ़ा होगा। 1945 के बाद के विउपनिवेशीकरण में इसका क्या महत्व रहा होगा?

उपनिवेशों में राष्ट्रवादी आंदोलन

1945 से 1975 के बीच अगर उपनिवेशवाद समाप्त हुआ तो उसका मुख्य श्रेय उन देशों में उपनिवेशवाद के विरुद्ध हो रहे जन आंदोलनों को ही जाता है। पूरे उपनिवेशकाल में लगभग हर उपनिवेश में कहीं न कहीं प्रभावित समूहों द्वारा विद्रोह होता रहा। उदाहरण के लिए, भारत में जगह–जगह जनजातियों व किसानों का विद्रोह 1750 से लेकर 1950 तक चलता रहा (जैसे – 1856 संथाल विद्रोह, 1857 का विद्रोह, 1910 में बस्तर का भूमकाल विद्रोह, 1946 से 1950 तक तेलंगाना किसान विद्रोह आदि)। ये विद्रोह दो कारणों से महत्वपूर्ण थे – पहला, उन्होंने उपनिवेशी राजनैतिक सत्ता को चुनौती दी। दूसरा, उन्होंने वैचारिक उपनिवेशवाद जिसके माध्यम से शासकों ने उपनिवेश के लोगों की सोच पर हावी होने की चाहत को भी ठुकरा दिया। हालाँकि ये विद्रोह काफी प्रभावशाली थे, परन्तु वे इतने शक्तिशाली नहीं थे कि उपनिवेशी सत्ता को हरा पाएँ। इन सशस्त्र विद्रोहों के अलावा किसान, मज़दूर, व्यापारी व शिक्षित मध्यम वर्ग के लोग भी लगातार अपनी मांगों को लेकर आंदोलन करते रहे। ये आंदोलन किसी वर्ग विशेष की मांगों को लेकर ज़रूर थे मगर उनका सम्मिलित असर औपनिवेशी शासन पर भी पड़ा। इनके अलावा राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आंदोलन भी तीव्रता के साथ उभरने लगे। भारत में 1885 से ही इस दिशा में विचार प्रारंभ हो चुका था और 1905 के बाद काफी तीव्र होता गया। यह आंदोलन द्वितीय विश्व युद्ध के बीच 1942 में अपने चरम पर पहुँचा और सबको यह स्पष्ट हो चला कि देर सबेर भारत को आज़ादी मिलना तय है। चीन में भी राष्ट्रवादी क्रांति 1911 में शुरू हुई लेकिन उसे पूर्ण रूपेण सफल होने के लिए 1949 की साम्यवादी क्रांति तक इन्तज़ार करना पड़ा। ज़्यादातर एशियाई और अफ्रीकी देशों में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ही राष्ट्रवादी आंदोलनों की शुरूआत हुई।

आपने कक्षा 9 में विभिन्न उपनिवेशों में हुए विद्रोहों के बारे में पढ़ा होगा। चीन और इथियोपिया के विद्रोहों को याद करके उनकी प्रमुख बातों को कक्षा में प्रस्तुत करें।

1905 से 1945 के बीच भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख चरण क्या–क्या थे? याद करके उनके बारे में कक्षा में चर्चा करें।

इन राष्ट्रवादी आंदोलनों के समक्ष कई चुनौतियाँ थीं। ज़्यादातर देशों में लोग जातीयता, भाषा, प्रांतीयता और धर्म के आधार पर छोटे समूहों में बंटे थे और उनमें एक राष्ट्र की भावना नहीं थी। इन विविधताओं को समेटते हुए एक राष्ट्र का गठन करना और उसके साझे हित को सबके लिए सर्वोपरि बनाना एक कठिन काम था। सभी लोगों को साथ लाने वाला तत्व अक्सर केवल विदेशी शासकों का विरोध करना ही था। अक्सर इसके लिए उन्हें उपनिवेशी शासकों द्वारा बनाए गए उपायों का ही उपयोग करना पड़ा जैसे भारत में अंग्रेज़ी भाषा और पत्रिकाओं का उपयोग देश के लोगों को एक साथ लाने के लिए किया गया उसी तरह अन्य देशों में भी अंग्रेज़ी, फ्रेंच, डच आदि भाषाओं का उपयोग हुआ।

आमतौर पर राष्ट्रवादी नेता आधुनिक शिक्षा प्राप्त लोग थे जो लोकतंत्र, उदारवाद या साम्यवादी विचारों से प्रभावित थे लेकिन उनके देश के अधिकांश लोग अपने पुराने विचारों को ही लेकर चल रहे थे जो प्रायः पुरूष प्रधान, सामन्ती, धार्मिकता या कबीलाई सोच पर आधारित थे। ऐसे में दो तरह की धाराएँ राष्ट्रवादी आंदोलन को प्रभावित करने लगीं। एक धारा ऐसी थी जो आधुनिक शिक्षा और संस्थाओं की मदद से नए विचारों को लोगों में फैलाते हुए राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास करना चाहती थी। दूसरी ओर ऐसी धारा थी जो पुरानी परंपराओं व धर्मों के आधार पर लोगों में साझी भावना विकसित करने का प्रयास कर रही थी। इस तरह राष्ट्रवादी आंदोलनों में सामाजिक बदलाव और पुराने पहचानों को बनाए रखने की बात साथ–साथ चलती रही।

राष्ट्रवादियों के समक्ष दूसरी चुनौती यह थी कि वे प्रायः धनी और संभ्रान्त सामाजिक तबकों में से थे और समाज के गरीब और शोषित लोगों के बीच उनका प्रभाव कम था। इस कारण उनके राष्ट्रवादी आंदोलन में गरीबों की भागीदारी और उनकी सुनवाई निश्चित करना आसान नहीं था। आपको याद होगा कि भारत में गाँधी जी, जवाहरलाल नेहरू और वल्लभ भाई पटेल जैसे कांग्रेस के नेता संभ्रांत वर्ग के होते हुए भी गरीब किसानों, मज़दूरों व जनजातियों के आंदोलनों में सम्मिलित हुए थे और उनके हितों को राष्ट्रवादी आंदोलन में समाहित करने का प्रयास किया। इन्हीं प्रयासों के कारण इन समूहों के लोग राष्ट्रवादी आंदोलन में शामिल हुए। लेकिन कई अन्य देशों में ऐसा नहीं हो पाया और गरीब तबके के लोग कटे रहे।

राष्ट्रवादियों के समक्ष तीसरी चुनौती यह थी कि अधिकांश देशों में लोकतांत्रिक प्रणाली विकसित ही नहीं हुई थी, न ही वहाँ व्यापक जन भागीदारी के आधार पर राष्ट्रवादी आंदोलन बने पर भारत इन मामलों में अपवाद ही रहा क्योंकि 1880 से ही भारत में लोकतांत्रिक प्रणाली का आभास लोगों को होने लगा था। अंग्रेज़ सरकार ने भारत में मतदान तथा चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा नगर पालिकाओं के कामकाज की परंपरा शुरू कर दी थी। 1919 और 1935 में व्यापक चुनाव के आधार पर प्रांतीय सरकारों का गठन भी हुआ था। इनके अलावा भारत में प्राथमिक शिक्षा अन्य देशों की तुलना में अधिक व्यापक थी और उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय भी स्थापित थे। इनमें शिक्षा प्राप्त करके एक सचेत मध्यम वर्ग उभर चुका था जो देश के लगभग हर वर्ग, जाति, धर्म और प्रांत का प्रतिनिधित्व करता था। राष्ट्रवादी आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए एक लोकतांत्रिक संगठन कांग्रेस पार्टी भी उपस्थित थी। इसके अलावा भी देश में अन्य कई दल थे जो विभिन्न विचारधाराओं, समुदायों, वर्गों और प्रांतों के हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। इन कारणों से भारत में लोकतांत्रिक प्रणाली काफी सुदृढ़ थी लेकिन श्रीलंका को छोड़कर अन्य देशों में इस तरह की लोकतांत्रिक संस्थाओं और अनुभवों का अभाव था। इस कारण इन देशों में उपनिवेश के विकल्प में लोकतंत्र नहीं बल्कि तानाशाही या सैनिक शासन विकसित हुआ।

उपनिवेश को समाप्त करके स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की भावना होने की ज़रूरत है?

विविध भाषा और धर्म के मानने वाले लोग क्या एक राष्ट्र बना सकते हैं? अगर उसमें किसी एक धर्म या भाषा हावी हो तो क्या होगा?

राष्ट्रहित क्या किसान, मज़दूर, व्यापारी, उद्योगपति, ज़मींदार, पुरूष, महिला आदि के हितों के आपसी सामंजस्य से बनता है या इन सबके हितों से हटकर होता है? उदाहरण सहित चर्चा करें।

उपनिवेशों में मज़बूत लोकतांत्रिक परंपराओं के न होने से उसके विउपनिवेशीकरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

विउपनिवेशीकरण के कुछ उदाहरण

1 भारत

1935 के बाद भारत में अंग्रेज़ शासन के विरुद्ध लगातार आंदोलन चल रहे थे। हर तरफ किसान, मज़दूर, आदिवासी, युवा आदि उपनिवेशी व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने लगे थे। इस बीच गाँधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी राष्ट्रवादी आंदोलन का नेतृत्व कर रही थी। जैसे–जैसे यह साफ होते गया कि भारत स्वतंत्र हो जाएगा तो विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच आपसी तनाव भी उभरने लगे। डॉ. अम्बेडकर जैसे दलित नेता यह चिन्ता करने लगे कि स्वतंत्र भारत में दलितों का क्या स्थान होगा। इसी तरह मुसलमान भी चिन्ता करने लगे। तमिलनाडु जैसे राज्य के नेता भी यह सोचने लगे कि स्वतंत्र भारत में उनके लिए क्या जगह

बनेगी। कांग्रेस पार्टी यह कहती रही कि वह पूरे भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करती है और वह निष्पक्षता के साथ सबके साथ न्याय कर सकेगी लेकिन इसको लेकर सभी आश्वस्त नहीं थे। अंग्रेज़ों ने इन आशंकाओं का लाभ उठाया और यह जताने लगे कि कांग्रेस भारत के सभी तबकों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती है और उन्होंने अलग–अलग धर्म और जाति के लोगों को आगे आकर अपना दावा रखने के लिए प्रेरित किया। भारतीय मुस्लिम लीग के नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने मुसलमानों के लिए अलग देश पाकिस्तान की मांग की इसी समय ज़मीनी स्तर पर जन आंदोलन तीव्र होते गए। कई राज्यों में किसान विद्रोह की राह पर थे। शहरों में मजदूर भी संगठित होकर हड़ताल आदि आंदोलन कर रहे थे। सेना और नौसेना भी विद्रोह की कगार पर थे और 1946 में तो अरब सागर पर तैनात नौसेना के जवान विद्रोह कर गए और उन्हें भारी जन समर्थन मिला। स्थिति को देखते हुए लगा कि अगर स्वतंत्रता और टली तो देश में अराजकता का माहौल बन जाएगा और अंग्रेज़ सरकार ने फैसला किया कि भारत का विभाजन किया जाएगा तथा पूर्व और पश्चिम के मुसलमान बहुल इलाकों को अलग देश बनाया जाएगा। यही नहीं उन्होंने 500 से अधिक अधीनस्थ राजाओं को यह तय करने की स्वतंत्रता दी कि क्या वे भारत या पाकिस्तान के साथ विलय चाहते हैं या स्वतंत्र बने रहना चाहते हैं। इनमें से अधिकांश राजा भारत में विलय के लिए तैयार हो गए थे मगर कुछ बड़े राज्य जैसे – जम्मू कश्मीर, हैदराबाद आदि के शासकों ने स्वतंत्र बने रहने का प्रयास किया। लेकिन उन्हें भी अन्ततः जनभावनाओं के सामने झुकना पड़ा और वे भारत के साथ विलय के लिए राजी हो गए। स्वतंत्र भारत का लोकतांत्रिक संविधान कैसे बना और सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किस प्रकार संसद का चुनाव हुआ? यह कहानी आपने राजनीतिशास्त्र के अध्याय में पढ़ी होगी।

2 इंडोनेशिया

द्वीपों का देश इंडोनेशिया भारत के दक्षिण पूर्व में स्थित है। आपने कक्षा 9 में पढा होगा कि किस तरह यह देश हॉलैंड (नीदरलैण्ड) का उपनिवेश बना। यहाँ हम इंडोनेशिया की स्वतंत्रता की कहानी पढ़ेंगे।

चित्र 10.1 : 1945 में इंडोनेशिया की स्वतंत्रता की घोषणा करते हुए सुकर्णो

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी ने हॉलैंड को हराकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था और इंडोनेशिया पर जर्मनी के सहयोगी जापान का कब्ज़ा हो गया था। जापान ने इंडोनेशिया की स्वतंत्रता की बात तो की मगर वास्तव में इंडोनेशिया को अपना उपनिवेश बनाना चाहा। जापान की सेना ने बर्बरता से इंडोनेशिया के जंगलों को काटने, खनिज संपदा पर कब्ज़ा करने और व्यापारिक फसलों को जापान भेजने का काम प्रारंभ कर दिया और स्थानीय लोगों से जबरदस्ती काम करवाने लगा लेकिन उन्होंने कुछ हॉलैंड विरोधी इंडोनेशियाई राष्ट्रवादियों को खुलकर राजनैतिक काम करने दिया। इनमें सुकर्णो भी सम्मिलित थे जिन्हें डच सरकार ने दस साल से जेल में बंद रखा था। जापानी सरकार ने डच भाषा की जगह स्थानीय भाषा के उपयोग को प्रोत्साहन दिया लेकिन कई राष्ट्रवादियों ने जापान का विरोध भी किया और कहा कि जापान हॉलैंड से भी बुरा व्यवहार कर रहा है। कुल मिलाकर 1939 से 1945 के बीच इंडोनेशिया में राजनैतिक अस्थिरता के चलते राष्ट्रवादी गतिविधियाँ तेज हो गईं।

चित्र 10.2 : बांडुंग सम्मेलन में अफ्रीका, एशिया और पूर्वी यूरोप के स्वतंत्रता संग्राम के नेता – भारत के नेहरू, घाना के नक्रूमाह, मिस्र के नासर, इंडोनेशिया के सुकर्णो और यूगोस्लाविया के टीटो।

जैसे ही जापान का हारना तय हो गया, 17 अगस्त 1945 को सुकर्णो ने जापान की सहमति से इंडोनेशिया की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इस बीच ब्रिटेन की सेना ने इंडोनेशिया पर नियंत्रण स्थापित कर लिया और पुराने डच अधिकारियों को वापस लाने का प्रयास किया। इंडोनेशिया के लोगों ने ब्रिटेन का कड़ा विरोध किया और जगह–जगह घोर युद्ध भी हुए। ब्रिटिश सेना के अधिकतर सैनिक भारतीय थे जो भारत और इंडोनेशिया दोनों की स्वतंत्रता के पक्ष में थे। अतः ब्रिटेन हॉलैंड को सत्ता सौंपकर हटना चाहता था। हॉलैंड चाहता था कि इंडोनेशिया पर उसका शासन बना रहे और सेना के बल पर उसने इंडोनेशिया पर अधिकार करने का प्रयास किया। जब यह संभव नहीं लगा तो उसका प्रयास था कि इंडोनेशिया के कई स्वतंत्र हिस्से हों और उनमें से एक सुकर्णो शासित देश हो। अमेरिका और ब्रिटेन के दबाव में आकर सुकर्णो ने यह व्यवस्था स्वीकार कर ली। लेकिन उसके विरुद्ध साम्यवादियों के नेतृत्व में एक विद्रोह हुआ जिसे बहुत खून–खराबे के बाद कुचला गया। इस बीच डच सेना ने देश पर कब्ज़ा करके सुकर्णो को बंदी बना लिया। पूरे विश्व में इसका विरोध हुआ और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने इसके विरोध में प्रस्ताव पारित किया। अंततः एक गोलमेज सम्मेलन किया गया जिसमें भावी इंडोनेशिया की शासन प्रणाली पर सहमति बनी। 27 दिसंबर 1949 को औपचारिक रूप से सत्ता का हस्तांतरण हुआ और इंडोनेशिया पर हॉलैंड का औपनिवेशिक शासन समाप्त हुआ। भारत ने इंडोनेशिया के स्वतंत्रता आंदोलन में लगातार समर्थन दिया और संयुक्त राष्ट्र में उसके पक्ष में आवाज़ उठाई। अपनी स्वतंत्रता के बाद इंडोनेशिया भी भारत के साथ गुटनिरपेक्ष आंदोलन का सक्रिय सदस्य बना। 1955 में इंडोनेशिया के बांडुंग शहर में एशिया और अफ्रीका के 29 नव स्वतंत्र देशों का महत्वपूर्ण सम्मेलन हुआ जिसमें हर प्रकार के उपनिवेशवाद का विरोध किया गया और देशों के बीच मैत्री स्थापित करने के लिए कुछ बुनियादी सिद्धांत स्थापित किए गए।

इंडोनेशिया में संसदीय लोकतंत्र स्थापित होना था। पहला आम चुनाव 1955 में हुआ जिसमें कई क्षेत्रीय दलों को समर्थन मिला लेकिन ये दल मिलकर एक राष्ट्रीय सरकार नहीं चला पाए। इस दौर में इंडोनेशिया की साम्यवादी दल का तेज़ी से फैलाव हुआ और उसने सुकर्णो सरकार को अपना समर्थन दिया। साम्यवादियों ने सरकार पर दबाव डाला कि वह डच और ब्रिटिश कंपनियों को अपने हाथ में ले ले। उनके दबाव के कारण भूमि सुधार कानून भी पारित हुए जिनके तहत गरीब किसानों को ज़मीन वितरित की गई। अमेरिका का मानना था कि यह साम्यवादी झुकाव अन्ततः सोवियत संघ के पक्ष में जाएगा। उसने कई प्रांतों में इस्लामी कट्टरपंथियों को उकसाया

चित्र 10.3 : बांडुंग सम्मेलन के उपलक्ष्य में इंडोनेशिया द्वारा जारी किया गया डाक टिकिट। इस चित्र में क्या कहा जा रहा है?

जिसके कारण कई विद्रोह हुए। ऐसे में राष्ट्रपति सुकर्णो ने संसदीय व्यवस्था समाप्त करके साम्यवादी दल की मदद से राष्ट्रपति प्रणाली लागू की। धीरे – धीरे कई विपक्षी राजनैतिक दलों को प्रतिबंधित किया गया। इस बीच साम्यवादी दल की बढ़ती ताकत से यह लगने लगा कि देर–सबेर वह सत्ता हथिया लेगी। इसे रोकने के लिए 1965 में सेना की एक भाग ने योजना बनाकर बड़े पैमाने पर साम्यवादियों का कत्ल कर डाला और देश भर में धार्मिक कट्टरवादियों ने साम्यवादियों को मारने का कार्य किया। कहा जाता है कि इस दौर में पांच लाख से अधिक लोग मारे गए। तेज़ी से बदलते घटनाक्रम में सुकर्णो को अपदस्थ किया गया और सेना के समर्थन से सुहार्तो इंडोनेशिया के राष्ट्रपति बने। इस सत्ता परिवर्तन को अमेरिका का भरपूर समर्थन प्राप्त था। सुहार्तो का शासन 1998 तक चलता रहा और उसके बाद इंडोनेशिया में लोकतंत्र स्थापित हो पाया।

इंडोनेशिया की स्वतंत्रता में जापान की क्या भूमिका थी?

उपनिवेशी शासकों का प्रयास था कि इंडोनेशिया कई छोटे स्वतंत्र राज्यों में बंट जाए जबकि वहाँ के राष्ट्रवादियों ने इसका विरोध किया। दोनों की नीतियों में यह अन्तर क्यों रहा होगा?

इंडोनेशिया में 1998 तक लोकतंत्र क्यों स्थापित नहीं हो पाया?

डच और ब्रिटिश कंपनियों का राष्ट्रीयकरण इंडोनेशिया की स्वतंत्रता के लिए किस प्रकार ज़रूरी रहा होगा?

3 वियतनाम

वियतनाम का स्वतंत्रता संघर्ष 20वीं सदी की महान गाथाओं में से एक है। वियतनाम के लोगों ने जो मुख्यतः गरीब किसान थे, विश्व के सबसे शक्तिशाली देशों से अत्यन्त भयावह युद्ध लड़कर स्वतंत्रता हासिल की थी। वियतनाम और उसके पड़ोसी देश लाओस और कंबोडिया तीनों फ्रांस के उपनिवेश थे। फ्रांस ने उन्हें अनाज और अन्य कच्चा माल स्रोत के रूप में देखा और किसानों पर दबाव डाला कि वे बाज़ार के लिए अनाज उगाएं। 1929 की महामंदी के कारण अनाज की कीमत कम होती गई और किसान अपनी ज़मीन साहूकारों व ज़मींदारों को बेचने लगे और अपनी ही ज़मीन पर बंटाईदार बनते गए। उपनिवेशी शासक वहाँ एक शिक्षित मध्यम वर्ग को पनपने नहीं देना चाहता था और वहाँ किसी प्रकार का विश्वविद्यालय खुलने नहीं दिया। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए फ्रांस जाना पड़ता था। फिर भी अपने प्रयास से कई लोग शिक्षा प्राप्त करके विदेशों में पढ़कर स्वदेश लौट रहे थे। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान ने वियतनाम पर कब्ज़ा किया। लेकिन इस बीच वियतनाम के राष्ट्रवादियों ने सोवियत संघ की मदद से वियतमिन्ह आंदोलन को प्रारंभ किया था और 1945 में जापान को हारते देखकर

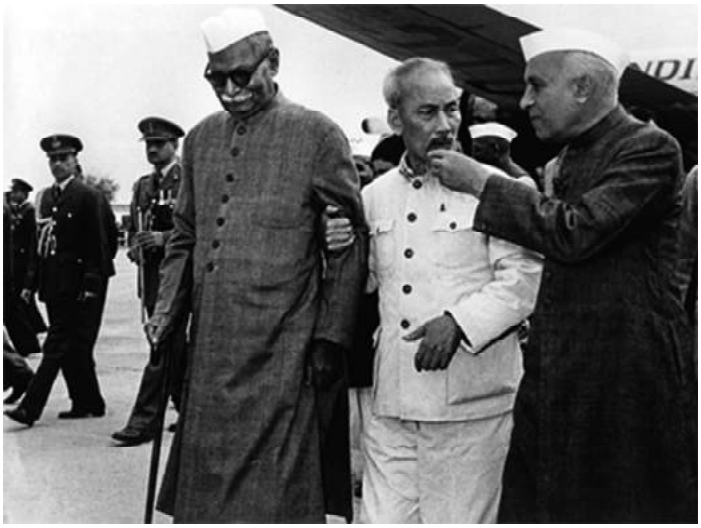

चित्र 10.4 : वियतनाम के राष्ट्रपति हो चि मिन्ह, भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू

उन्होंने अपनी सेना बनाकर उत्तरी वियतनाम की राजधानी हनोई पर अधिकार कर लिया। उनके नेता थे साम्यवादी विचार के हो चि मिन्ह और सेनापति थे वो न्यूयेन जियप। 1945 में हो चि मिन्ह ने स्वतंत्र वियतनामी गण्तंत्र की घोषणा की लेकिन युद्ध के बाद फ्रांस फिर से अपनी हुकूमत जमाना चाहता था और उसने प्रयास किया कि वियतनाम में उनकी इच्छानुसार चलने वाले शासक हों। उन्होंने हो चि मिन्ह को खदेड़कर पहाड़ों व जंगलों में जाने पर विवश किया। लेकिन मई 1954 को वियतनामी सेनापति जियप ने बहुत ही चतुर रणनीति अपनाकर विशाल फ्रांसीसी सेना को हराकर आत्मसमर्पण करने पर मजबूर किया। इस करारी हार के कारण फ्रांस ने वियतनाम और पड़ोसी देशों से हटने का निर्णय लिया। लेकिन इस बीच संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस क्षेत्र में साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव को देखकर निर्णय लिया कि वह फ्रांस की जगह लेगा और वियतनाम में उसके एक कठपुतली शासक को स्थापित करेगा। वियतनाम का विभाजन किया गया और उत्तर वियतनाम पर साम्यवादियों का अधिकार हुआ और दक्षिण पर अमेरिकी प्रभाव वाले इलाके में एक पुराने राजा को शासक बनाया गया। अमेरिका ने दक्षिण वियतनाम को बचाने के बहाने वहाँ अपनी सेना तैनात की।

चित्र 10.5 : वियतनाम के एक गाँव में ज़मीन वितरण कानून समझाने के लिए बैठक

उत्तर वियतनाम में जहाँ साम्यवादी वियतमिन्ह का नियंत्रण था विस्तृत भूमिसुधार कार्यक्रम अपनाया गया। इसके तहत वहाँ ज़मींदारी प्रथा समाप्त करके जोतने वाले किसानों को ज़मीन का मालिक बनाया गया और हर किसान कितनी ज़मीन रख सकता है इसकी सीमा बांध दी गई। इस कानून का क्रियान्वयन करते समय हज़ारों ज़मींदार मारे गए और उनकी संपत्ति ज़ब्त की गई। इसका कुल नतीजा यह हुआ कि सदियों बाद वियतनाम के गरीब किसान और भूमिहीन मज़दूर जमीन के मालिक हो गए। ये किसान अब वियतमिन्ह के सबसे मज़बूत समर्थक बन गए।

अमेरिका और सोवियत संघ के बीच की स्पर्धा में वियतनाम एक मोहरा बनने लगा। अमेरिका चाहता था कि वियतमिन्ह को हराकर उसके अधीनस्थ सरकार स्थापित करे दूसरी ओर सोवियत संघ ने वियतमिन्ह सरकार को सैनिक सहायता दी ताकि वह युद्ध में अमेरिका का सामना कर पाए। अमेरिका ने बर्बरता के साथ उत्तर वियतनाम पर बमवर्षा की यहाँ तक कि उसने एजेन्ट ऑरेंज नामक ऐसे घातक रासायनिक हथियारों का प्रयोग किया जिससे बहुत बड़े क्षेत्र पर दशकों तक घास भी नहीं उग पाई। लोगों को क्रूरता से मारने वाली बमवर्षा की तस्वीरों को देखकर दुनिया दहल गई। वियतनाम के लोग भी बहुत दृढ़ता और बहादुरी के साथ लड़े। दोनों ओर हज़ारों लोग मारे गए। धीरे–धीरे अमेरिका के लोगों में इस युद्ध के प्रति विरोध बनने लगा। लाखों की तादात में अमेरिका के लोग वियतनाम युद्ध रोकने के लिए प्रदर्शन करने लगे। इनमें वे लोग शामिल थे जो वियतनाम में लड़े थे और उसकी क्रूरता से दुखी थे। अमेरिका को भी समझ में आने लगा कि वियतनाम युद्ध जीता नहीं जा सकता है। 1974 में अंततः अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन

ने घोषणा की कि अमेरिका अपनी सेना वियतनाम से वापस बुला लेगा। अमेरिका की सहायता के बिना दक्षिण वियतनाम की सरकार टिक नहीं पाई और 30 अप्रैल 1975 में देश के दोनों भागों का विलय हुआ।

वियतनाम में संसदीय लोकतंत्र स्थापित हुआ मगर वहाँ पर केवल साम्यवादी दल और उसके सहयोगियों की मान्यता है अर्थात् वहाँ बहुदलीय लोकतंत्र स्थापित नहीं हुआ। राज्य के हर अंग पर साम्यवादी दल का वर्चस्व है और नागरिकों का अधिकार भी सीमित है अर्थात् वियतनाम एक पूर्ण लोकतांत्रिक देश नहीं बन पाया।

भारत और वियतनाम के राष्ट्रीय आंदोलनों में आप क्या समानता व अन्तर देख पाते हैं?

अमेरिका और सोवियत संघ की आपसी स्पर्धा का वियतनाम पर क्या प्रभाव पड़ा?

वियतनाम के स्वतंत्रता आंदोलन में भूमि सुधार का क्या महत्व था?

4 अफ्रीका

अफ्रीका के अधिकांश भाग पर ब्रिटेन और फ्रांस के उपनिवेश थे। 1945 के बाद जहां ब्रिटेन एशिया के देशों को स्वतंत्रता देने के पक्ष में था वहीं अफ्रीका पर अपना नियंत्रण बढ़ाना चाहता था। फ्रांस भी अपने अफ्रीकी उपनिवेशों को खोना नहीं चाहता था। वे अपने उपनिवेशों को बनाए रखना चाहते थे या फिर उनकी स्वतंत्रता के बाद अपने हितों की अधिकतम रक्षा करना चाहते थे।

अफ्रीका में उपनिवेशों का सीधा नियंत्रण केवल तटीय इलाकों के बंदरगाहों पर था और अन्दरूनी भागों पर स्थानीय व कबीलाई मुखियाओं का नियंत्रण था। इन मुखियाओं की नियुक्ति उपनिवेशी शासन करता था। भारत की तरह वहाँ विस्तृत प्रशासनिक व्यवस्था नहीं बनी। उपनिवेशी सरकारों की अफ्रीका में आधुनिक शिक्षा के प्रसार के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्होंने बहुत कम प्राथमिक या उच्च शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की थी। इस कारण अफ्रीका में आधुनिक नौकरशाही या शिक्षित मध्यम वर्ग का विकास नहीं हो पाया। आपको याद होगा कि इसी वर्ग ने भारत में समाज सुधार, राष्ट्रीय व स्वतंत्रता आंदोलनों का सूत्रपात किया था। लेकिन अफ्रीका में एक प्रबल और संगठित मज़दूर वर्ग का विकास हुआ। यह वर्ग मुख्य रूप से रेल्वे, खदान और बंदरगाहों में कार्यरत था। 1945 के बाद मज़दूर वर्ग अपने अधिकारों तथा अफ्रीकी व गोरे मज़दूरों के बीच समानता की माँगों को लेकर संघर्ष करने लगे। यह वर्ग पूरे अफ्रीका में फैला था जो प्रारंभ में किसी देश विशेष का आंदोलन न होकर संपूर्ण अफ्रीका के आंदोलन का स्वरूप ले रहा था। इसके चलते पूरे अफ्रीका महाद्वीप के लोगों में एकता और आपसी भाईचारे और साम्राज्यवाद विरोध की भावना उत्पन्न हुई।

अफ्रीका में मध्यम वर्ग के कमज़ोर होने तथा कबीलाई मुखिया के प्रशासन से वहाँ के राष्ट्रवाद पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

अफ्रीका में मज़दूरों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा? उससे राष्ट्रवादी भावना कैसे बनी होगी?

1956 तक फ्रेंच आधिपत्य वाले उपनिवेशों में कोई स्थानीय स्वशासन स्थापित नहीं था लेकिन अफ्रीकी लोगों को फ्रांस के संसद के चुनाव में भाग लेने का सीमित अधिकार था। अफ्रीका से कई प्रतिनिधि चुनकर फ्रांस के संसद में पहुँचे और मंत्री भी बने मगर अफ्रीका में स्वशासन नहीं था। 1954 में वियतनाम में फ्रांस की पराजय का प्रभाव अफ्रीका पर भी पड़ा और उसी वर्ष अल्जीरिया में फ्रांस के विरुद्ध युद्ध शुरू हुआ जो 1958 तक चलता रहा और अन्ततः फ्रांस को अल्जीरिया को स्वतंत्रता देनी पड़ी। दूसरी तरफ ब्रिटेन और फ्रांस ने मिलकर 1956 में ही मिस्र पर आक्रमण किया क्योंकि एक महत्वपूर्ण परिवहन मार्ग पर मिस्र ने अपना

अधिकार स्थापित किया था लेकिन इसमें उन्हें हार का मुँह देखना पड़ा। दोनों देशों को यह स्पष्ट हो गया कि उन्हें अफ्रीकी देशों को भी स्वतंत्रता देनी होगी।

1958 में फ्रांस ने ऐलान किया कि हर उपनिवेश में जनमत संग्रह किया जाएगा और जो भी देश स्वतंत्र होना चाहते हैं वे स्वतंत्र हो सकते हैं। कई बड़े देशों ने फ्रांस से अलग होने के पक्ष में मतदान किया मगर कुछ देश ऐसे भी थे जिन्होंने फ्रांस के साथ रहने का निर्णय लिया। 1960 तक कई देशों ने फ्रांस के साथ संधि की जिसके तहत फ्रांस अभी भी रक्षा, शिक्षा और आर्थिक विकास के मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला था। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि इन देशों में प्रबल नेतृत्व का अभाव था और उन्हें लगा कि उन्हें स्थिर होने के लिए फ्रांस की सहायता ज़रूरी होगी। कई राजनैतिक आलोचकों का मानना था कि यह नव उपनिवेशवाद ही है जहाँ उपनिवेशों को सीमित आज़ादी दी गई और वे अभी भी फ्रांस पर निर्भर हैं और फ्रांस का उनकी अर्थव्यवस्था और शिक्षा पर नियंत्रण बना रहा।

1960 में ब्रिटेन कठिन आर्थिक परिस्थितियों से गुज़र रहा था और वह उपनिवेशों में अपने खर्च कम करना चाहता था। अतः उसने भी इसी तरह का प्रस्ताव रखा कि जो देश स्वतंत्र होना चाहते हैं उन्हें स्वतंत्रता दी जाएगी। नाईजीरिया और घाना जैसे कुछ बड़े देशों ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और स्वतंत्रता प्राप्त कर ली लेकिन कई देश जहाँ गोरे लोगों की बसाहट थी वे इसके लिए तैयार नहीं हुए क्योंकि स्वतंत्रता मिलने पर उनके विशेषाधिकार समाप्त हो जाने का खतरा था। इन गोरे लोगों के विरोध के कारण दक्षिण अफ्रीका के कई देशों में स्वतंत्रता का मामला काफी उलझ गया। दक्षिण अफ्रीका, रोडेशिया (वर्तमान ज़िम्बाब्वे) तथा मोज़ाम्बीक (जो पोर्तुगाल का उपनिवेश था) जैसे देशों में नस्लीय रंगभेद की नीति को अपनाने वाले गोरे लोगों का शासन बना। ये राज्य कहने के लिए स्वतंत्र तो थे मगर इनमें अल्पसंख्यक यूरोपीय गोरे लोगों को विशेषाधिकार प्राप्त था और काले अफ्रीकी लोगों को किसी प्रकार के राजनैतिक अधिकार नहीं मिले थे। ब्रिटेन जैसा देश इन राज्यों का कारगर विरोध नहीं कर सका क्योंकि वह गोरे लोगों की सरकारों से लड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ। अफ्रीकी लोगों को नस्लवादी राज्यों से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए एक लंबा और कठिन संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में छापामार युद्ध से लेकर शान्तिपूर्वक असहयोग आंदोलन तक सभी तरीके अपनाए गए। अन्ततः 1990 से 1994 के बीच ये सभी देश पूरी तरह स्वतंत्र हुए।

चित्र 10.6 : तंजानिया की स्वतंत्रता की घोषणा के बाद अपने समर्थकों के कंधे पर प्रधानमंत्री जूलियस नैरेरी।

अफ्रीका के अन्य देशों में स्वतंत्रता का इतिहास कठिन ही रहा। अधिकांश देशों में पारंपरिक शासकों को उपनिवेशी शासकों ने कमज़ोर कर रखा था। इन देशों में लोगों में अपने–अपने कबीले के प्रति निष्ठा तो थी मगर किसी वृहद राष्ट्र के प्रति उनकी आस्था नहीं बनी थी। अक्सर इन देशों का गठन उपनिवेशी प्रशासन की ज़रूरतों के आधार पर हुआ था, लोगों की भावनाओं के आधार पर नहीं। इस कारण इन देशों में लोगों के बीच आपसी तनाव और प्रतिस्पर्धा बनी रही। यही नहीं इन देशों में सबल मध्यम वर्ग या व्यापारी–उद्योगपति वर्ग नहीं पनप पाया क्योंकि अधिकांश व्यापार और प्राकृतिक खनिज संसाधनों पर विदेशी कंपनियों का अधिकार था। उनके पास न कारगर सेना थी, न प्रशासनिक व्यवस्था, न उच्च शिक्षा संस्थान। इन समस्याओं के बीच ये देश किस प्रकार उभरे इसे समझने के लिए हम नाईजीरिया का उदाहरण पढ़ेंगे।

नाईजीरिया

आबादी की दृष्टि से नाईजीरिया अफ्रीका का सबसे बड़ा देश है जहाँ आज लगभग 17 करोड़ लोग रहते हैं। अंग्रेज़ों के आने से पहले नाईजीरिया नाम का कोई देश नहीं था। अंग्रेज़ों ने नाईजर नदी के आसपास के इलाकों को मिलाकर अपना प्रभाव क्षेत्र बनाया जिसे उन्होंने नाईजीरिया नाम दिया। उन्होंने केवल तटीय इलाकों पर अपना सीधा शासन रखा और अन्दरूनी इलाकों पर वहाँ के स्थानीय मुखियाओं को शासन करने दिया। नाईजीरिया के उत्तरी भागों मे हौसा–फूलानी लोगों का प्रभाव था जो मुसलमान थे।

दक्षिण–पूर्वी भाग ईबो जनजाति के अधिकार में था जबकि दक्षिण पश्चिम भाग योरूबा जनजाति के प्रभाव में था। इन कबीलों के आय का प्रमुख साधन था पाम तेल, कपास आदि व्यापारिक फसलों का उत्पादन। तटीय क्षेत्र में खनिज तेल की खोज हुई और यह नाईजीरिया के आय का प्रमुख स्रोत है।

नाईजीरिया में राष्ट्रवाद तटीय इलाकों के शिक्षित लोगों द्वारा प्रारंभ किया गया जो तीनों जनजातीय प्रदेशों के एक राष्ट्र के रूप में एकीकरण, वृहद अफ्रीकी राष्ट्रवाद, के पक्ष में थे। हर्बर्ट मैकॉले ने 1923 में नाइजीरिया राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक पार्टी की नींव रखी। यह नाइजीरिया की प्रथम राजनैतिक पार्टी थी। 1923, 1928 और 1933 के चुनावों में इस दल ने सभी सीटें जीती। 1930 के समय मैकॉले ने ब्रिटिश उपनिवेशी सरकार पर उग्रवादी हमलों का भी समर्थन किया। नमादी आजीकिवे ने 1936 में नाइजीरिया युवा आंदोलन की नींव रखी। वे चाहते थे कि एक समग्र नाइजीरिया की पहचान बने और सभी जनजातियाँ उसमें भाग लें। नाइजीरियन राष्ट्रवाद द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् प्रभावशाली बना। इस आंदोलन के आधार स्तम्भ थे मज़दूर संगठन और वे सैनिक जो द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटेन के पक्ष में लड़े थे और युद्ध के बाद लौट आए थे। 1945 में मज़दूर संगठनों ने राष्ट्रीय सार्वजनिक हड़ताल का आयोजन किया ।

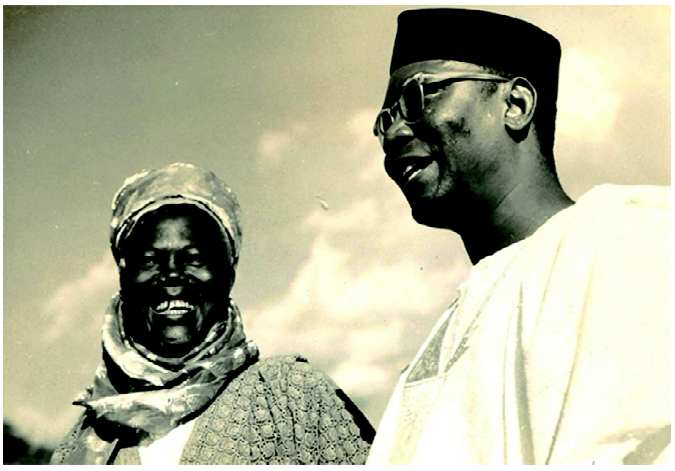

चित्र 10.7 : राष्ट्रपति नमादी आजीकिवे

नाइजीरियन राष्ट्रवादियों के समक्ष दो काम थे – एक उपनिवेशी शासकों से लड़ाई और दूसरा विविध और विरोधी जातीय दलों को जोड़ना। राष्ट्रीय आंदोलन उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में ज़्यादा शक्तिशाली था और इससे उत्तर–दक्षिण भागों के बीच एक दूरी बनी। दक्षिण में भी योरूबा और ईबो के बीच तनाव और टकराव बना रहा। 1950 तक इन तीनों क्षेत्रों में क्षेत्रीय पार्टियों के नेतृत्व में आंदोलन चल रहे थे। ये क्षेत्रीय पार्टियाँ

थीं उत्तर में रूढ़ीवादी नार्थन पीपुल्स कांग्रेस, पूर्व में द नेशनल कॉउंसिल फॉर नाइजीरिया एंड कैमरून और पश्चिम में द एक्शन ग्रुप।

स्वतंत्रता और निर्बल प्रजातंत्र : राष्ट्रवाद की लहर को ध्यान में रखते हुए अंग्रेज़ों ने नाइजीरिया को स्वतंत्रता देने का निश्चय किया और तीनों क्षेत्रों को स्वायत्ता प्रदान की। 1 अक्टूबर 1963 को नाइजीरिया स्वतंत्र हो गया और नमादी आजीकिवे राष्ट्रपति बने। दुर्भाग्य से नई व्यवस्था में न्यायसंगत और प्रजातांत्रिक संतुलन नहीं बन सका और शीघ्र ही नाइजीरिया गृहयुद्ध और सैन्य शासन में फंस गया। 1966 में सैनिक शासन स्थापित हुआ और आजीकिवे और उनके कई सहयोगियों को मार डाला गया। सैनिक शासन के दौर में नाइजीरिया की राजनीति में उत्तर का वर्चस्व स्थापित हुआ। नागरिक और प्रजातांत्रिक सरकारों को स्थापित करने के कई प्रयास किए गए लेकिन यह बार–बार असफल हुआ। सैन्य शासन व्यवस्था और बहुराष्ट्रीय तेल कॉर्पोरेशन (जो भ्रष्ट शासकों को वित्तीय सहायता देते थे) ने साथ मिलकर काम किया। उन्होंने नाइजीरिया में भ्रष्टाचार और मानवाधिकारों के दमन को बढ़ावा दिया।

सैन्य तानाशाही के लंबे अन्तराल के पश्चात् नाइजीरिया ने 1999 में प्रजातांत्रिक सरकार का चयन किया। लेकिन अभी भी वहाँ के महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन, खनिज तेल के उत्खनन पर विदेशी कंपनियों का नियंत्रण बना हुआ है और वहाँ के लोगों को इसका पूरा फायदा नहीं मिल रहा है। उल्टा उन्हें अपने देश के पर्यावरण जैसे–जंगल, पानी के स्रोत और समुद्र तट पर भयंकर प्रदूषण का सामना करना पड़ रहा है।

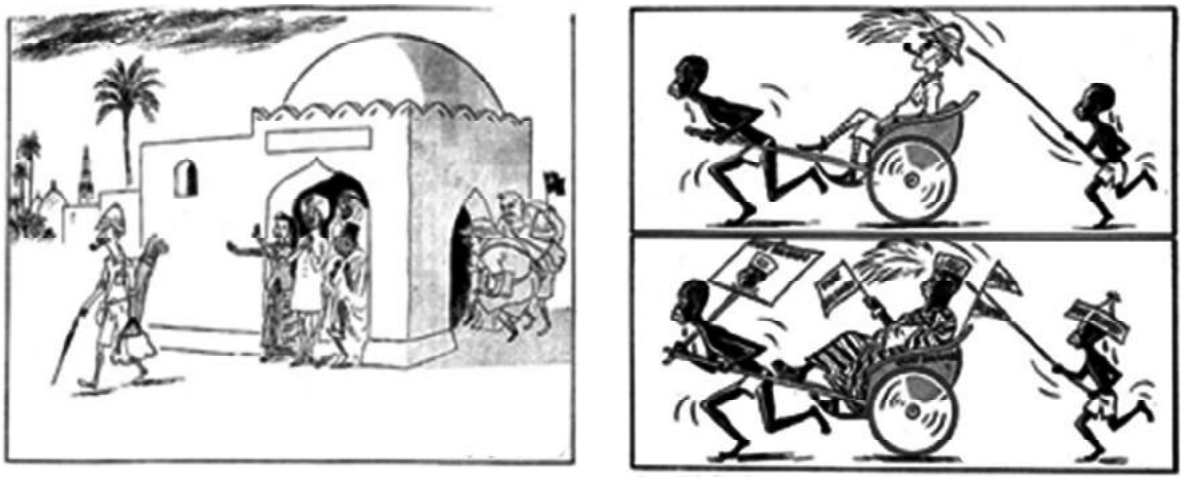

चित्र 10.8 : उपनिवेशीकरण के बारे में दो कार्टून – इनमें क्या कहा जा रहा है?

YHDPTH

'शीत युद्ध' और सोवियत संघ का विघटन 1945 से 1992

1945 में सोवियत संघ, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन आदि ने मिलकर जर्मनी और जापान को हराया था। लेकिन यह एकता कायम नहीं रह पाई और सोवियत संघ और अमेरिका एक–दूसरे के प्रतिद्वंद्वी और विरोधी के रूप में उभरे। सोवियत संघ साम्यवाद और समाजवाद के पक्ष में था और विश्व में समाजवाद को फैलाने में विश्वास रखता था। किसी देश के संसाधन (कारखाने, बैंक, खदान आदि) सरकार के नियंत्रण में हों और उनका उपयोग समाज के सभी तबकों के हित में हो और सरकार समाज में असमानता को कम करने का प्रयास करे – ये साम्यवादी नीतियाँ थीं। इसके विपरीत अमेरिका निजी उद्यमिता को बढ़ावा देना चाहता था जिसमें संसाधन निजी हाथों में हों और बाज़ार बेरोकटोक चले। नीति के स्तर पर अमेरिका लोकतंत्र, बहुदलीय चुनाव आदि को बढ़ावा देना चाहता था, ये तो थे दोनों के बीच

सैद्धांतिक अन्तर। व्यावहारिक स्तर पर दोनों देश अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार चाहते थे ताकि युद्ध और व्यापार में मदद मिले। एक ओर सोवियत संघ समाजवाद का प्रतीक बना तो दूसरी ओर अमेरिका पूँजीवाद और लोकतंत्र का प्रतीक बना। लेकिन व्यवहार में उनकी वास्तविक नीतियाँ अक्सर दूसरे देशों व उनके संसाधनों पर नियंत्रण जमाने की थी।

1945 में जो वार्ताएँ और संधियाँ हुईं उनके तहत एक तरह से दोनों देशों ने विश्व में अपने प्रभाव क्षेत्र की सीमा निर्धारित कर ली थी। सोवियत संघ के प्रभाव क्षेत्र में पूर्वी यूरोप था और बाद में चीन, कोरिया आदि देश जुड़ गए। बाकी विश्व पर अमेरिका और उसके सहयोगियों का प्रभाव क्षेत्र बना। दोनों देशों ने इस सीमा को स्वीकार तो किया मगर एक–दूसरे पर शक करते रहे। प्रारंभ में अमेरिका का स्थान सामरिक रूप से ऊँचा था क्योंकि विश्व में केवल उसी के पास परमाणु हथियार थे लेकिन 1950 के दशक में सोवियत संघ के पास भी ये हथियार उपलब्ध हो गए।

1945 से 1970 तक विश्व अर्थव्यवस्था लगातार विकास कर रही थी और दोनों देशों के बीच तनाव तो था मगर युद्ध की नौबत नहीं आई लेकिन 1970 के बाद विश्व आर्थिक व्यवस्था में मंदी छा गई और दोनों देशों के बीच तनाव अत्यधिक बढ़ गया। दोनों देशों के पास पूरे विश्व को ध्वस्त करने लायक परमाणु हथियार थे और दोनों को यह पता था कि अगर परमाणु युद्ध होता तो निश्चित ही दोनों देश एक–दूसरे को ही नहीं बल्कि पूरे विश्व को तबाह कर देंगे। अब वे सीधे एक–दूसरे से युद्ध न करके उपनिवेशी देशों के माध्यम से अप्रत्यक्ष युद्ध लड़ने लगे। जब किसी बात पर दो पड़ोसी देशों के बीच तनाव होता तो दोनों महाशक्ति देश सैन्य और अन्य सहायता देकर उन्हें युद्ध के लिए तैयार करते। उदाहरण के लिए 1950 में कोरिया और 1954 में वियतनाम का बंटवारा हुआ। उत्तर और दक्षिण कोरिया तथा वियतनाम के बीच लगातार युद्ध और संघर्ष की परिस्थिति बनी और सोवियत संघ एक पक्ष की तो अमेरिका दूसरे पक्ष की सहायता करता। इसी प्रकार भारत और पाकिस्तान का बंटवारा हुआ और दोनों देशों के बीच तनाव की स्थिति में सोवियत संघ भारत को और अमेरिका पाकिस्तान को समर्थन देते रहे। पश्चिम एशिया में अरब देश और इज़रायल के बीच इसी तरह संघर्ष की स्थिति बनी। दक्षिण अफ्रीका में अंगोला, नामीबिया और मोजांबीक के स्वतंत्रता संघर्ष भी इसी तरह सोवियत संघ और अमेरिका के अपरोक्ष युद्ध के शिकार हुए।

चित्र 10.9 : जर्मनी में 1980 के दशक में हुए शान्ति आंदोलन का एक दृश्य

सबसे अधिक खतरनाक तो दोनों देशों के बीच की शस्त्र प्रतिस्पर्धा थी। यह जानते हुए भी कि परमाणु युद्ध में किसी की भी जीत नहीं हो सकती है, सोवियत संघ और अमेरिका यही प्रयास करते रहे कि दूसरे देश को परास्त करने के लिए और घातक व अधिक मात्रा में हथियार बने। इन्हें उन्होंने विश्व भर के अपने सैन्य ठिकानों में तैनात कर रखा था। पूरी दुनिया के देश इस प्रकार परमाणु हथियारों के निशाने पर थे। यही नहीं दोनों देश लगातार यह धमकी देते रहे कि वे किसी तनाव की स्थिति में इन हथियारों का उपयोग कर

सकते हैं। एक और बड़ी समस्या थी कि अगर किसी तकनीकी गलती से न चाहते हुए भी अगर किसी परमाणु अस्त्र का उपयोग किया जाए तो भी दुनिया का विनाश हो सकता है। इस तरह 1975 से 1989 तक पूरी दुनिया परमाणविक विनाश के कगार पर खड़ी रही।

स्थिति की गंभीरता को देखते हुए पूरे विश्व में खासकर अमेरिका और यूरोप में (जहाँ सबसे अधिक परमाणु हथियार तैनात थे) आम लोगों के विरोध प्रदर्शन और शान्ति आंदोलन होने लगे। लाखों की तादाद में महिला, पुरूष और बच्चों ने इन आंदोलनों में भाग लिया और अपने ही देश की सरकारों से मांग की कि वे बिना कोई शर्त अपने परमाणु हथियारों को नष्ट करें और किसी दूसरे देश को अपनी भूमि में उन्हें रखने की अनुमति न दें। सोवियत संघ में लोकतांत्रिक अधिकार सीमित होने के कारण वहाँ बड़े पैमाने में यह आंदोलन नहीं हो पाया मगर वहाँ के बुद्धिजीवियों ने इन आंदोलनों का भरपूर समर्थन किया। इन आंदोलनों के दबाव के चलते सोवियत संघ और अमेरिका के नेताओं में भी यह विचार आया कि परमाणु शस्त्र मुक्त विश्व बनाना है। दोनों देशों के बीच परमाणु अस्त्रों को कम या खत्म करने के संबंध में लगातार वार्ताएँ चलीं जो कई विफलताओं के बाद अंत में 1998 में आइसलैंड की राजधानी रैक्जेविक में और अमरिका की राजधानी वॉशिंगटन में पूरी हुईं। निरस्त्रीकरण की इस अत्यंत महत्वपूर्ण संधि पर अमेरिका और सोवियत संघ के राष्ट्रपति – रोनाल्ड रीगन और मिखैल गोर्बचोव ने हस्ताक्षर किए जिसके तहत दोनों देशों ने अपने परमाणु हथियार कम करने और उनके प्रयोग की संभावना को नगण्य बनाने का निर्णय लिया। इन संधियों के साथ ही शीत युद्ध समाप्त हुआ।

लेकिन शीत युद्ध ने गहरे घाव और प्रभाव विश्व पर छोड़े। पहला तो इसके चलते सोवियत संघ और अमेरिका सहित विश्व के अधिकांश देशों को विकास और लोकहित पर धन खर्च न करके शस्त्रों और सेनाओं पर खर्च करने पर मजबूर किया। कुछ देशों ने जो शस्त्रों के व्यापार और शस्त्र उद्योगों पर निर्भर थे जिन्होंने तो मुनाफा कमाया मगर अधिकांश देश आर्थिक रूप से कमज़ोर ही हुए। इनमें स्वयं सोवियत संघ सम्मिलित था।

सोवियत संघ की कमज़ोरी का फायदा उठाते हुए कई पूर्वी यूरोपीय देश जो सोवियत संघ के नियंत्रण के कारण छटपटा रहे थे, तेज़ी से स्वतंत्र हुए। सबसे महत्वपूर्ण घटनाक्रम में जर्मनी के दो भागों का विलय हुआ और उसकी राजधानी बर्लिन को बांटने वाली दीवार को नाटकीय तरीके से आम लोगों की हुजूम ने ध्वस्त कर दिया। सोवियत संघ इन सब के प्रभाव से उभर नहीं पाया और 1992 में अप्रत्याशित तरीके से खुद ढह गया। अब साम्यवादी सोवियत संगठन की जगह अनेक छोटे गणतंत्र स्थापित हुए जिन्होंने पूँजीवाद और चुनावी लोकतंत्र को अपनाया। इसके साथ ही आधुनिक विश्व में समानता और समाजवाद लाने का एक महान प्रयास विफल हुआ। शीत युद्ध के एक और प्रभाव को आज विश्व झेल रहा है। जब

चित्र 10.10 : रैक्जेविक वार्ता में रीगन और गोर्बचोव

सोवियत संघ ने अरब देशों पर अपना प्रभाव डाला और अमेरिका व इज़रायल के विरुद्ध उनको तैयार किया तो अमेरिका ने उन देशों में यह भावना फैलाई कि साम्यवादी सोवियत संघ से इस्लाम धर्म को खतरा है। इसी तरह जब सोवियत संघ ने अफगानिस्तान पर आक्रमण करके उस पर नियंत्रण जमाया तो अमेरिका ने इस्लामी धार्मिक समूहों को उकसाकर उन्हें सोवियत संघ से लड़ने के लिए घातक शस्त्र दिए। इसी तरह प्रायः विश्व के अन्य भागों में भी छापामार युद्ध करने के लिए सोवियत संघ और अमेरिका ने गुटों को तैयार किया। वर्तमान युग की आतंकवाद समस्या का आरंभ शीत युद्ध से ही होता है।

अभ्यास

1. रिक्त स्थान भरें :

   क. इंडोनेशिया के राष्ट्रवादी और प्रथम राष्ट्रपति ..... थे।

   ख. वियतनाम के क्रांतिकारी नेता और प्रथम राष्ट्रपति ..... थे।

   ग. नाइजीरिया के राष्ट्रवादी और प्रथम राष्ट्रपति ..... थे।

   घ. इंडोनेशिया की स्वतंत्रता का संघर्ष ..... देश के विरुद्ध था।

   च. वियतनाम की स्वतंत्रता का संघर्ष ..... और ..... देशों के विरुद्ध था।

2. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और अफ्रीका के स्वतंत्रता आंदोलन में क्या समानताएं और अन्तर हैं?
3. एशिया के तीनों देशों – भारत, वियतनाम और इंडोनेशिया में स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधार हुए। इन तीनों की आपस में तुलना करें।
4. इंडोनेशिया और नाइजीरिया में लोकतंत्र स्थापित होने में क्या समस्याएँ थीं? भारत में इन समस्याओं का समाधान कैसे निकाला गया?
5. शीत युद्ध में परमाणु शस्त्रों की क्या भूमिका थी?
6. परमाणु निरस्त्रीकरण कैसे सम्भव हुआ?
7. वर्तमान में आप शीत युद्ध का क्या प्रभाव देखते हैं?

परियोजना कार्य

इंटरनेट और पुस्तकालय से किसी देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बारे में पता करें और उस पर एक दीवार पोस्टर तैयार करें। अन्त में कक्षा में इसकी एक प्रदर्शनी का आयोजन करें।